दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

निर्णय की तिथि: 14.02.2025

<u>नि.प्र.अ. 140/2025</u>

<u>RFA 140/2025</u>

जन चेतना जागृती एवं शैक्षणिक विकास मंच व अन्य

.....अपीलार्थीगण

द्वारा: श्री मीर अदनान जहूर एवं श्री अखिल भारत कुकरेजा, अधिवक्तागण।

बनाम

श्री आनंद राज झावर, मेसर्स आरआर एग्रोटेक के एकल स्वत्वधारी

.....प्रत्यर्थी

द्वारा: कोई नहीं।

कोरमः माननीय न्यायमूर्ति श्री गिरीश कठपालिया

<u>निर्णय</u> (मौखिक)

<u>सि.वि.आ. 8976/2025 (अपील दायर करने में 562 दिनों की देरी की माफी हेतु)</u>

1. अपीलार्थीगण, जो एक पंजीकृत गैर-सरकारी संगठन (एनजीओ) हैं, और इसके अध्यक्ष और सचिव ने धन वसूली के निर्णय और डिक्री को चुनौती देने के लिए सि.प्र.सं. की धारा 96 के तहत संलग्न अपील दायर करने में एक वर्ष से अधिक की देरी को माफ करने की मांग करते हुए वर्तमान आवेदन दायर किया है। अपीलार्थीगण के अनुसार, संबंधित विलंब 562 दिनों का है, जबकि इस न्यायालय की रजिस्ट्री के अनुसार विलंब 565 दिनों का है। मैंने अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता की बात सुनी और अभिलेखों का अध्ययन किया।

2. साथ में संलग्न अपील दायर करने में हुई देरी का कारण आवेदन में पूर्व अधिवक्ता के वृत्तिक अवचार के आधार पर ही बताया गया है, जो निम्नवत उद्धृत किया गया है:

> *"3. उक्त विलंब न तो जानबूझकर किया गया था और न ही सोची-समझी साजिश के तहत, बल्कि यह पूरी तरह से अपीलार्थीगण द्वारा नियुक्त पिछले अधिवक्ता के गंभीर वृत्तिक अवचार और लापरवाही के कारण हुआ था, जो अपीलार्थीगण को आक्षेपित निर्णय और डिक्री पारित होने के बारे में सूचित करने में विफल रहे थे। महत्वपूर्ण तथ्यों को जानबूझकर छिपाने के कारण, अपीलार्थीगण को डिक्री पारित होने की बिल्कुल भी जानकारी नहीं थी और वे निर्धारित समय सीमा के भीतर अपील दायर करने के अपने वैधानिक अधिकार का प्रयोग नहीं कर सके।*
>
> *4. अपीलार्थीगण आम नागरिक होने के नाते और अपने पूर्व विधिक अधिवक्ता पर भरोसा करते हुए कि वे उनका सत्यनिष्ठा से प्रतिनिधित्व करेंगे, इस सद्भावनापूर्वक विश्वास के तहत बने रहे कि उनके अधिकारों की रक्षा के लिए उचित विधिक कार्रवाई की जा रही है। हालांकि, हाल ही में पूछताछ करने पर अपीलार्थीगण को इस तथ्य की जानकारी हुई कि*

आक्षेपित निर्णय पहले ही पारित हो चुका था और उनके पूर्व विधिक अधिवक्ता की निष्क्रियता के कारण अपील करने का उनका कानूनी अधिकार समाप्त हो गया था।

3. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि उनके पूर्व अधिवक्ता के वृत्तिक अवचार हेतु अपीलार्थीगण को इसे भुगतने देना नहीं चाहिए। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि अपीलार्थी कानून की प्रक्रियाओं की बारीकियों से परिचित नहीं हैं, इसलिए अपील दायर करने में हुई इस देरी के लिए उन्हें दंडित नहीं किया जा सकता है। अपने तर्कों के समर्थन में, अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता माननीय उच्चतम न्यायालय के ***विधिक प्रतिनिधियों द्वारा पेरुमौन भगवती देवस्वम पेरिनडु गांव बनाम भार्गवी अम्मा (मृत) व अन्य,*** (2008) 8 एससीसी 321 के मामले में और गुजरात उच्च न्यायालय के ***निमेश दिलीपभाई ब्रह्मभट्ट बनाम हितेश जयंतिलाल पटेल***, सिविल आवेदन संख्या 6547/2020, दिनांक 02.05.2022 को निर्णीत हुए इस मामले में पारित निर्णयों पर भरोसा करते हैं। इसके अतिरिक्त, अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता का यह भी तर्क है कि विचारण न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय और डिक्री पारित करने से पहले अपीलार्थीगण को कोई सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था और इस संबंध में विद्वान अधिवक्ता ने विचारण न्यायालय के दिनांक 13.04.2023 के आदेश पत्र का हवाला देते हुए संकेत करते हैं कि विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित अधिवक्ता केवल परोक्षी अधिवक्ता थे, जिन्होंने मुख्य अधिवक्ता के परिवार में हुई मृत्यु के आधार पर सुनवाई स्थगित करने का

अनुरोध किया था। इसके अतिरिक्त, अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता का यह भी तर्क है कि आक्षेपित निर्णय और डिक्री अधिकारिता विहीन न्यायालय द्वारा पारित की गई थी। इस आवेदन पर कोई अन्य तर्क प्रस्तुत नहीं किया गया है।

4. सर्वप्रथम, इस तर्क के संबंध में कि विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थीगण को सुनवाई से वंचित किया गया था, यह दलील दिनांक 13.04.2023 के आदेश के बिल्कुल विपरीत है। अभिलेख से स्पष्ट है कि आक्षेपित निर्णय और डिक्री से संबंधित वाद वर्ष 2016 से लंबित था। अपीलार्थीगण ने दिनांक 13.04.2023 से पहले के विचारण न्यायालय के आदेश पत्र अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किए हैं, जिससे उन्हें दिए गए स्थगनों की संख्या का पता चल सके। इसके अतिरिक्त, दिनांक 13.04.2023 के आदेश से भी यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थीगण के स्थगन अनुरोध को स्वीकार करने के बाद, माननीय विचारण न्यायालय ने वर्तमान प्रत्यर्थी के अधिवक्ता की बात सुनी और अपीलार्थीगण के अधिवक्ता को किसी भी कार्यदिवस पर दोपहर 03:00 बजे तर्क प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता दी और मामले को अंतिम आदेश हेतु दिनांक 27.04.2023 को सूचीबद्ध किया। यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें एक पक्ष की सुनवाई के बाद विचारण न्यायालय बहस बंद कर दे और आदेश के लिए मामला स्थगित कर दे। यदि कोई वादकारी न्यायालय में उपस्थित होने से बचता है और कार्यवाही को लंबा

खींचने की कोशिश करता है, तो विचारण न्यायालय के पास ऐसी चूक करने वाले कक्षीकार को लिखित दलीलें दाखिल करने या किसी अन्य दिन दलीलें पेश करने की अनुमति प्रदान करने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं बचता, बशर्ते कि वह जुर्माना वहन करे। ऐसे वादकारियों से निपटने के लिए एक अन्य विकल्प वही है जो विद्वान विचारण न्यायालय ने इस मामले में अपनाया, यानी दोषी वादकारी को आदेश की तिथि से पूर्व किसी भी दिन अपनी दलीलें पेश करने का निर्देश देना। जैसा कि आक्षेपित निर्णय से स्पष्ट है, अपीलार्थीगण ने इस अवसर का लाभ नहीं उठाया और दलीलें पेश करने के लिए बिल्कुल भी उपस्थित नहीं हुए। जैसा कि विचाराधीन आवेदन के उद्धृत अंश से स्पष्ट है, अपीलार्थीगण ने स्वयं यह दलील दी है कि उनके अधिवक्ता ने ही अवचार किया है। अतः, इसे न्यायालय द्वारा अपीलार्थीगण को निष्पक्ष सुनवाई से वंचित किए जाने का मामला नहीं माना जा सकता है।

5. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अपीलार्थीगण द्वारा अपील दायर करने में हुई 565 दिनों की भारी देरी के संबंध में प्रस्तुत किया गया एकमात्र स्पष्टीकरण यही है कि उनके पूर्व अधिवक्ता ने उन्हें अंधेरे में रखा था। इस स्पष्टीकरण की परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत न्यायिक रूप से स्वीकृत मापदंडों पर जांच की जानी आवश्यक है।

5.1 परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के संबंध में, विभिन्न न्यायिक पूर्व निर्णयों से परिष्कृत निर्विवाद विधिक प्रतिपादनाएँ निम्नलिखित हैं। यदि कोई आवेदक न्यायालय को यह संतुष्ट करने में सक्षम है कि वह अपने नियंत्रण से परे परिस्थितियों के कारण अपील या आवेदन दायर करने में असमर्थ था, सिवाय आदेश XXI सि.प्र.सं. के किसी भी प्रावधान के तहत आवेदन के, तो न्यायालय को अपील आदि दायर करने में हुई देरी को माफ करने का विवेकाधिकार है। अन्य किसी भी विवेकाधिकार की तरह, अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत दिए गए विवेकाधिकार का प्रयोग भी समय के साथ विकसित हुए सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए विवेकपूर्ण ढंग से किया जाना चाहिए। समय के साथ विकसित हुए सिद्धांतों में से एक यह है कि अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत आवेदक द्वारा प्रस्तुत कारण की पर्याप्तता की व्याख्या आवेदक के पक्ष में उदारतापूर्वक की जानी चाहिए। जब तक देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया जाता है या दिया गया स्पष्टीकरण पूरी तरह से अस्वीकार्य होता है, तब तक न्यायालय को उदारतापूर्वक देरी को माफ कर देना चाहिए, यदि इस बीच तृतीय पक्षकार के अधिकार स्थापित नहीं हुए हों। न्यायालय को देरी की अवधि की नहीं बल्कि कारण की पर्याप्तता की जांच करनी होती है, यानी यदि पर्याप्त कारण हो तो लंबी अवधि की देरी को माफ किया जा सकता है, लेकिन यदि ऐसा न हो तो कुछ दिनों की देरी को भी माफ नहीं किया जा सकता है। "*पर्याप्त कारण*" अभिव्यक्ति की उदारतापूर्वक व्याख्या करने का

उद्देश्य वास्तविक न्याय सुनिश्चित करना है जब आवेदक पर कोई लापरवाही, निष्क्रियता या सद्भावना के अभाव का आरोप नहीं लगाया जा सकता है।

5.2 इसमें कोई संदेह नहीं कि अधिवक्ता की त्रुटिवश वादकारी को हानि नहीं उठानी चाहिए। लेकिन यह एक सर्वव्यापी नियम नहीं हो सकता। प्रत्येक मामले की जांच उसके विशिष्ट तथ्यात्मक आधार पर की जानी चाहिए। उक्त नियम का संरक्षण, जो उचित मामलों में निरक्षर आम व्यक्ति को दिया जा सकता है, शिक्षित वादकारी, निगम या सरकारी निकायों को नहीं दिया जा सकता है। केवल अधिवक्ता नियुक्त करने मात्र से ही वादी यह दावा नहीं कर सकता कि उस पर मामले की जानकारी रखने का कोई दायित्व नहीं है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि आवेदक अधिवक्ता के वृत्तिक अवचार को ऐसी देरी का कारण बताते हुए उसके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं करने का विकल्प चुनता है, तो उसके स्पष्टीकरण पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। ऐसी परिस्थितियों में देरी को माफ करना, आवेदक के निराधार आरोपों पर विश्वास करना, पूर्ववर्ती अधिवक्ता को बिना सुने और वह भी न्यायिक अभिलेख के आधार पर दोषी ठहराने के समान होगा।

5.3 ***रामलाल बनाम रीवा कोलफील्ड्स लिमिटेड***, एआईआर 1962 एससी 361 के मामले में, भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"7. परिसीमा अधिनियम की धारा 5 की व्याख्या करते समय, दो महत्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। पहली बात यह है कि अपील करने के लिए निर्धारित समय सीमा समाप्त होने पर डिक्री धारक को डिक्री को पक्षकारों के मध्य बाध्यकारी मानने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। दूसरे शब्दों में, जब निर्धारित परिसीमा अवधि समाप्त हो जाती है, तो डिक्री धारक को परिसीमा कानून के तहत डिक्री को चुनौती से परे मानने का लाभ प्राप्त हो जाता है, और समय बीतने के साथ डिक्री धारक को प्राप्त इस कानूनी अधिकार को लापरवाही से भंग नहीं किया जाना चाहिए। एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, वह यह है कि यदि विलंब को क्षमा करने के लिए पर्याप्त कारण प्रस्तुत किए जाते हैं, तो न्यायालय को विलंब को क्षमा करने और अपील स्वीकार करने का विवेक दिया जाता है। ***यह विवेकाधिकार जानबूझकर न्यायालय को प्रदान किया गया है ताकि इस संबंध में न्यायिक शक्ति और विवेकाधिकार का प्रयोग वास्तविक न्याय को बढ़ावा देने के लिए किया जा सके।***

(जोर दिया गया)

5.4 ***फिनोलक्स ऑटो प्राइवेट लिमिटेड बनाम फिनोलेक्स केबल्स लिमिटेड,*** 136(2007) डीएलटी 585(डीबी) के मामले में, इस न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने इस प्रकार से अभिनिर्धारित किया:

"6. इस संदर्भ में, हम ***पी.के. रामचंद्रन बनाम केरल राज्य,*** *IV(1997) सीएलटी 95 (एससी) मामले में उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं। उक्त निर्णय में, उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है* ***कि जब तक कोई उचित या संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया जाता, तब तक अत्यधिक विलंब को क्षमा नहीं किया जाना चाहिए****। निर्णय के अनुच्छेद 6 में, उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में अभिकथित किया है:*

> ***"परिसीमा विधि किसी विशेष पक्ष पर कठोर प्रभाव डाल सकती है, लेकिन जब कानून में ऐसा प्रावधान हो तो इसे पूरी सख्ती से लागू किया जाना चाहिए और न्यायालयों को न्यायसंगत आधार पर परिसीमा अवधि का विस्तार करने का अधिकार नहीं है।*** *इस प्रकार, उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किया गया विवेकाधिकार न तो उचित*

था और न ही विवेकपूर्ण। विलंब क्षमादान का आदेश मान्य नहीं है। अतः, यह अपील सफल होती है और आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय में दायर विलंब क्षमादान याचिका खारिज मानी जाएगी और विविध प्रथम अपील समय सीमा समाप्त होने के कारण खारिज की जाएगी। कोई जुर्माना नहीं।"

(जोर दिया गया)

5.5 ***पुंडलिक जलम पाटिल (मृत) बनाम कार्यकारी अभियंता जलगांव मध्यम परियोजना,*** (2008) 17 एससीसी 448 के मामले में, भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मूल रूप से परिसीमा की विधि लोक नीति पर आधारित हैं और न्यायालयों ने परिसीमा कानूनों के अस्तित्व का समर्थन करने वाले कम से कम तीन अलग-अलग कारण बताए हैं, अर्थात् (i) लंबे समय से निष्क्रिय पड़े दावों में न्याय से अधिक क्रूरता निहित है, (ii) यह कि प्रतिवादी उक्त दावे का खंडन करने के लिए साक्ष्य खो सकता था, और (iii) जिन व्यक्तियों के पास उचित वाद हेतुक हैं, उन्हें उचित तत्परता से उनका अनुसरण करना चाहिए। यह देखा गया कि परिसीमा कानूनों को अक्सर शांति का कानून कहा जाता है क्योंकि परिसीमा का असीमित और निरंतर खतरा असुरक्षा और अनिश्चितता उत्पन्न करता है जो लोक व्यवस्था के लिए आवश्यक हैं।

5.6 ***लंका वेंकटेश्वरलू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य*** (2011) 4 एससीसी 363 के मामले में, भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नवत टिप्पणी की:

"19. हमने विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर विचार किया है। प्रारंभ में यह कहना आवश्यक है कि सामान्यतः, इस देश की न्यायालयों,

जिसमें यह न्यायालय भी शामिल है, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत पर्याप्त कारण के आधार पर विलंब क्षमादान के आवेदन पर विचार करते समय उदार दृष्टिकोण अपनाते हैं।

न्यायालयों द्वारा विलंब को माफ करने के संबंध में विवेकाधिकार के प्रयोग में "उदार दृष्टिकोण" और "युक्तियुक्तता" की अवधारणाओं पर भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय ने ***बलवंत सिंह बनाम जगदीश सिंह*** (2010) 8 एससीसी 685 के मामले में विचार किया, जिसमें उन्होंने निम्नवत अभिनिर्धारित किया:

*"**25**. हम कह सकते हैं कि **भले ही "पर्याप्त कारण" शब्द की उदार व्याख्या की जाए, फिर भी यह उचित समय और संबंधित पक्षकार के उचित आचरण की अवधारणा के अंतर्गत अवश्य ही आता है।** उदार व्याख्या का उद्देश्य सामान्यतः "युक्तियुक्तता" की अवधारणा को उसके सामान्य अर्थ में प्रस्तुत करना है।*

*26. परिसीमा की विधि एक मौलिक विधि है और इसका पक्षकारों के अधिकारों और दायित्वों पर निश्चित प्रभाव पड़ता है। इन सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए और किसी भी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार इन्हें उचित रूप से लागू किया जाना चाहिए। एक बार जब किसी एक पक्षकार को दूसरे पक्षकार द्वारा देरी का पर्याप्त कारण और अपने स्वयं के आचरण को दर्शाने में विफलता के परिणामस्वरूप कोई मूल्यवान अधिकार प्रोद्भूत हो जाता है, तो आवेदक के मात्र अनुरोध पर उस अधिकार को छीन लेना अनुचित होगा, विशेष रूप से तब जब देरी सीधे तौर पर उस पक्षकार की लापरवाही, चूक या निष्क्रियता का परिणाम हो। दोनों पक्षकारों के साथ समान रूप से न्याय होना चाहिए। तभी न्याय के उद्देश्य पूरे हो सकते हैं। **यदि कोई पक्षकार अपने अधिकारों और उपायों को लागू करने में घोर लापरवाही बरतता है, तो दूसरे पक्षकार को उसके सतर्कतापूर्ण कार्य के परिणामस्वरूप विधि में प्रोद्भूत मूल्यवान अधिकार से वंचित करना भी उतना ही अन्यायपूर्ण होगा।***

27. ....

> *28. ... "उदार दृष्टिकोण", "न्याय-उन्मुख दृष्टिकोण" और "वास्तविक न्याय" जैसी अवधारणाओं का उपयोग परिसीमा के मूल कानून को नकारने के लिए नहीं किया जा सकता। विशेषकर उन मामलों में जहां न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि देरी का कोई औचित्य नहीं है..."*
>
> (जोर दिया गया)

5.7 ***शुभ्रा चिट फंड प्राइवेट लिमिटेड बनाम सुधीर कुमार***, 112 (2004) डीएलटी 609 के मामले में इस न्यायालय की अभिव्यक्ति में, अत्यंत अधिक उदारता तथा नरमी परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों को निरर्थक बना देगी, जिस दृष्टिकोण से न्यायालयों को बचना चाहिए।

5.8 ***विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से पाथापति सुब्बा रेड्डी (मृत) बनाम विशेष उप कलेक्टर (एलए),*** 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 513 के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के दायरे को पुनः परिभाषित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया:

> *"26. उपर्युक्त विधि के प्रावधानों और इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के सामंजस्यपूर्ण विचार से यह स्पष्ट है कि:*
>
> *(i) परिसीमा विधि इस सार्वजनिक नीति पर आधारित है कि मुकदमेबाजी का अंत उपचार के अधिकार को समाप्त करके होना चाहिए, न कि स्वयं अधिकार को समाप्त करके;*
>
> *(ii) कोई अधिकार या उपाय जिसका लंबे समय तक प्रयोग या लाभ नहीं उठाया गया हो, एक निश्चित अवधि के बाद समाप्त हो जाएगा या उसका अस्तित्व समाप्त हो जाएगा;*
>
> *(iii) परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या अलग-अलग तरीके से की जानी चाहिए, जैसे धारा 3 की व्याख्या कड़ाई से की जानी चाहिए जबकि धारा 5 की व्याख्या उदारतापूर्वक की जानी चाहिए;*

(iv) वास्तविक न्याय को अग्रसर करने हेतु, यद्यपि उदार दृष्टिकोण, न्याय-उन्मुख दृष्टिकोण या वास्तविक न्याय के उद्देश्य को ध्यान में रखा जा सकता है, लेकिन इसका उपयोग परिसीमा अधिनियम की धारा 3 में निहित परिसीमा के वास्तविक विधि को विफल करने के लिए नहीं किया जा सकता है;

(v) न्यायालयों को पर्याप्त कारण बताए जाने पर विलंब को क्षमा करने का विवेकाधिकार प्राप्त है, परन्तु उस शक्ति का प्रयोग विवेकाधीन प्रकृति का है और पर्याप्त कारण स्थापित होने पर भी विभिन्न कारकों जैसे कि अत्यधिक विलंब, लापरवाही और उचित परिश्रम की कमी के कारण इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता है;

(vi) मात्र यदि कुछ व्यक्तियों को समान मामले में राहत मिली है, तो इसका यह अर्थ नहीं है कि अन्य लोग भी उसी लाभ के हकदार हैं यदि न्यायालय अपील दायर करने में देरी के लिए बताए गए कारण से संतुष्ट नहीं है।

(vii) देरी को माफ करने में मामले के गुणागुण पर विचार करना आवश्यक नहीं है; और

(viii) विलंब क्षमादान आवेदन का निर्णय विलंब क्षमादान के लिए निर्धारित मापदंडों के आधार पर किया जाना चाहिए और शर्तों के लागू होने के कारण विलंब क्षमादान करना कानूनी प्रावधान की अवहेलना के समान है।

5.9 जहां तक अधिवक्ता के वृत्तिक अवचार से संबंधित विवाद्यक का प्रश्न है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने ***सलिल दत्ता बनाम टी.एम. एंड एम.सी. प्राइवेट लिमिटेड***, (1993) 2 एससीसी 185 के मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

"8. अधिवक्ता पक्षकार का अभिकर्ता होता है। उसके द्वारा किए गए कार्य और कथन, जो उसे दिए गए अधिकार के भीतर किए जाते हैं, मुख्य पक्षकार के कार्य और कथन माने जाते हैं, अर्थात् उस पक्षकार के जिसने उसे नियुक्त किया है। ***यह सत्य है कि कुछ परिस्थितियों में, न्यायालय न्यायहित में, अधिवक्ता की लापरवाही और/या दुराचार के बावजूद***

बर्खास्तगी आदेश या एकपक्षीय डिक्री को अपास्त कर सकता है, यदि उसे लगता है कि मुवक्किल निर्दोष वादकारी था, लेकिन ऐसा कोई पूर्ण नियम नहीं है कि कोई पक्षकार किसी भी समय अपने अधिवक्ता को अस्वीकार कर सकता है और राहत की मांग कर सकता है। इस प्रकार की पूर्ण छूट को मान्यता नहीं दी जा सकती। ऐसा पूर्ण नियम व्यवस्था के कामकाज को बेहद जटिल बना देगा। *रफीक [(1981) 2 एससीसी 788 : एआईआर 1981 एससी 1400] के मामले में की गई टिप्पणियों को उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए और इसे पूर्ण सत्य नहीं माना जा सकता। जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है, यह एक लंबित वाद था जिसे सात साल बाद अंतिम सुनवाई हेतु सूचीबद्ध किया गया था। यह शहर से दूर रहने वाले किसी ग्रामीण द्वारा दायर की गई दूसरी अपील नहीं थी, जहाँ न्यायालय स्थित है। प्रतिवादी भी कोई अनपढ़ ग्रामीण नहीं है, बल्कि कलकत्ता स्थित मुख्यालय वाली एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी है, जिसका प्रबंधन शिक्षित व्यवसायियों द्वारा किया जाता है जो अपने हित को भली-भांति समझते हैं। यह स्पष्ट है कि जब वाद की अंतिम सुनवाई से पहले उनके आवेदनों का निपटान नहीं किया गया, तो वे नाराज हो गए और न्यायालय में उपस्थित होने से इनकार कर दिया। हो सकता है, यह वादी द्वारा लगाए गए आरोप के अनुसार उनकी विलंबकारी रणनीति का हिस्सा हो। हो सकता है ऐसा न हो। लेकिन एक बात स्पष्ट है–उन्होंने न्यायालय के साथ असहयोग करना चुना। न्यायालय के प्रति ऐसा रुख अपनाने के बाद, प्रतिवादी को न्यायालय से रियायत मांगने का कोई अधिकार नहीं है। अधिवक्ता पर पूरा दोष मढ़ना और यह जताने की कोशिश करना कि वे कार्यवाही की प्रकृति या महत्व से पूरी तरह अनभिज्ञ थे, एक ऐसा सिद्धांत है जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता और न ही किया जाना चाहिए था।*

(जोर दिया गया)

5.10 ***मोड्रस मीडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम स्कोन एग्जिबिशन प्राइवेट लिमिटेड***, 2017 एससीसी ऑनलाइन डेल 8491 के मामले में, इस न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की: “

*"13. **वादकारी का यह कर्तव्य है कि वह अपने अधिकारों के प्रति सजग रहे और उससे यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह न्यायालय में उसके विरुद्ध लंबित या उसके द्वारा शुरू की गई न्यायिक कार्यवाही के प्रति भी उतना ही सजग रहे। वादकारी को अधिवक्ता पर पूरा दोष मढ़ने की अनुमति नहीं दी जा सकती।** ऐसा प्रतीत होता है कि देरी को माफ करवाने और डिक्री से बचने के उद्देश्य से अधिवक्ता पर दोष मढ़ा जा रहा है। **सिविल वाद या लिखित बयान दायर करने के बाद, वादकारी लापरवाही नहीं बरत सकता और लंबे समय बाद जागरूक नहीं बन सकता, मानो न्यायालय ऐसे लापरवाह वादकारियों द्वारा दायर वादों का भंडार हो। सारा दोष अधिवक्ता पर डालना और यह जताने की कोशिश करना कि वे कार्यवाही की प्रकृति या महत्व से पूरी तरह अनभिज्ञ थे, अपीलार्थी / आवेदक / प्रतिवादी कंपनी द्वारा प्रस्तुत किया गया एक सिद्धांत है, जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है और स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था। अपीलार्थी कोई साधारण या देहाती अनपढ़ व्यक्ति नहीं है, बल्कि शिक्षित व्यापारियों द्वारा संचालित एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी है, जो अपने हितों को भली-भांति जानती है।** वादकारी को सतर्क रहना चाहिए और सभी सुनवाइयों में अपने मामले को पूरी लगन से आगे बढ़ाना चाहिए। यदि वादकारी न्यायालय में पेश नहीं होता है और मामले को अपने अधिवक्ता की दया पर छोड़ देता है, इस बात की परवाह किए बिना कि उसके अधिवक्ता स्थगन के लिए किस प्रकार के बेतुके तर्क / बचाव प्रस्तुत कर रहे हैं, तो वादकारी को निश्चित रूप से हानि उठानी पड़ेगी। यदि वादकारी न्यायालय के निर्णयों और आदेशों की प्रतियां प्राप्त करने के लिए उपस्थित नहीं होता है ताकि उसे पता चल सके कि न्यायालय द्वारा क्या आदेश पारित किए गए हैं, तो वह इसके परिणामों के लिए उत्तरदायी होगा।*

(जोर दिया गया)

5.11 हाल ही में दिनांक 21.11.2024 को, ***रजनीश कुमार व अन्य बनाम वेद प्रकाश,*** 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3380 के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने उस स्थिति पर विचार किया जहां अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत आने वाले आवेदक ने अपील दायर करने में देरी का कारण अपने पूर्व अधिवक्ता को बताया, और इस प्रकार टिप्पणी की:

> *"10. ऐसा प्रतीत होता है कि सारा दोष विचारण न्यायालय में याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश हुए अधिवक्ता पर डाल दिया गया है।* ***हमने समय के साथ यह प्रवृत्ति देखी है कि वादकारी न्यायालय में कार्यवाही में लापरवाही और असावधानी बरतने के लिए अपने अधिवक्तागण को दोषी ठहराते हैं। मान भी लें कि संबंधित अधिवक्ता लापरवाह या असावधान था, तो भी यह अपने आप में लंबे और अत्यधिक विलंब को माफ करने का आधार नहीं हो सकता, क्योंकि वादकारी का यह कर्तव्य है कि वह अपने अधिकारों के प्रति सतर्क रहे और उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह न्यायालय में उसके द्वारा संस्थित की गई न्यायिक कार्यवाही के प्रति भी समान रूप से सतर्क रहे।*** *इसलिए, वादकारी को किसी भी समय अधिवक्ता पर पूरा दोष मढ़ने और इस प्रकार उसका त्याग करने तथा राहत मांगने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।*
>
> *(जोर दिया गया)*

6. वर्तमान मामले पर वापस आते हुए, एक विनिर्दिष्ट प्रश्न के उत्तर में, अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने स्वीकार किया कि अपीलार्थीगण द्वारा अपने पूर्व अधिवक्ता के कथित अवचार हेतु उनकेSS खिलाफ कोई कार्रवाई शुरू नहीं की गई है। ऐसी स्थिति में, ऊपर वर्णित न्यायिक निर्णयों के आलोक में, मुझे यह विश्वास करना कठिन लगता है कि अपीलार्थीगण के पूर्व अधिवक्ता द्वारा कोई अवचार किया गया था, जैसा कि उन्होंने आरोप लगाया है। इसके अतिरिक्त, संबंधित विधिज्ञ परिषद् के समक्ष किसी भी शिकायत के रूप में कोई कार्रवाई न होने की स्थिति में, अपीलार्थीगण द्वारा अपने पूर्व अधिवक्ता के वृत्तिक अवचार के संबंध में लगाए गए ऐसे आरोपों पर विश्वास करना भी पूर्व अधिवक्ता को बिना सुने, वह भी न्यायिक अभिलेख पर, दोषी ठहराने के समान होगा।

7. जैसा कि ऊपर उद्धृत न्यायिक पूर्व निर्णयों में चर्चा की गई है, ऐसा कोई सर्वमान्य नियम नहीं है कि अधिवक्ता के अवचार हेतु वादकारी को दंडित न किया जाए। न्यायालय को वादकारी की सामाजिक-आर्थिक और शैक्षिक स्थिति को ध्यान में रखना होगा। एक शिक्षित शहरी वादकारी इस नियम के तहत उसी तरह का संरक्षण प्राप्त करने का दावा नहीं कर सकता जैसा कि एक अशिक्षित ग्रामीण वादकारी को प्रदान किया जाता है, क्योंकि यदि बाद वाला पूर्ण रूप से अपने अधिवक्ता पर निर्भर रहता है और अपने वाद का हिसाब रखने में विफल रहता है, तो यह समझ में आता है, लेकिन यदि पूर्व वाला ऐसा करता है तो यह समझ में नहीं आता है। एक शिक्षित वादकारी के मामले में, अधिवक्ता की फीस का चेक साइन करने मात्र से उसका कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाता। एक शिक्षित वादकारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने वाद का अभिलेख रखे। वर्तमान मामले में, अपीलार्थीगण निरक्षर या अर्ध-साक्षर ग्रामीण व्यक्ति नहीं हैं। अपीलार्थीगण एक पंजीकृत एनजीओ और उसके वरिष्ठ पदाधिकारी हैं, इसलिए उनसे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे वाद की जानकारी न रखें।

8. यह निश्चित रूप से ऐसा मामला नहीं है जिसमें अपीलार्थीगण को उनके नियंत्रण से परे परिस्थितियों के कारण समय पर अपील दायर करने से रोका गया हो। अपीलार्थीगण को अपने विरुद्ध लंबित धन वसूली वाद पर नजर रखनी चाहिए थी, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया और यह सुनिश्चित नहीं

किया कि उनके अधिवक्ता विचारण न्यायालय के समक्ष अंतिम दलीलें पेश करें। यहाँ तक कि वाद का आक्षेपित निर्णय और डिक्री में परिणत होने के बाद भी अपीलार्थी उस पर निष्क्रिय बने रहे। अब वे अपने पूर्व अधिवक्ता के वृत्तिक अवचार के बहाने इतनी लंबी देरी की माफी नहीं मांग सकते। केवल देरी की अत्यधिक अवधि ही नहीं, यह बल्कि देरी का अस्वीकार्य स्पष्टीकरण भी है, जिसे अस्वीकार किया जाना चाहिए।

9. न्यायालय इस बात को भी नजरअंदाज नहीं कर सकता कि अपील दायर करने की समय सीमा समाप्त होने और लगभग डेढ़ वर्ष का अतिरिक्त समय बीत जाने के बाद, वर्तमान प्रत्यर्थी के पक्ष में एक युक्तियुक्त अपेक्षा उद्भूत होती है कि आक्षेपित डिक्री को अंतिम और बाध्यकारी माना जाए। अगर अब अपील दायर करने में हुई देरी को माफ कर दिया जाता है, तो यह न्याय का घोर अपमान होगा, जिससे सफल वादकारी को अपील की कार्यवाही के एक और दौर से गुजरना पड़ेगा।

10. उपरोक्त चर्चा को देखते हुए, विचाराधीन आवेदन खारिज किया जाता है।

RFA (नि.प्र.अ.) 140/2025, CM APPL. (सि.वि.आ.) 8978/2025 व CM APPL. (सि.वि.आ.) 8977/2025

11. परिणामस्वरूप, अपील और साथ में संलग्न आवेदनों को परिसीमा से वर्जित होने के कारण खारिज किया जाता है।

गिरीश कठपालिया
(न्यायाधीश)

14 फरवरी, 2025/आरवाई

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*